||ओ३म्||

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अरावणः॥

गुरु विरजानन्द दण्डी

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-36 जून अंक-6

जो उन्नति करना चाहते हो, तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्धेश्यानुसार आचरण करना स्वीकार करो, नहीं तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा

कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-४ (बिहार)

सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मो. 9334184136

सह सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मो. 9006166168
प्रेम कुमार आर्य
मो. 9570913817

सम्पादक मंडल
पं० व्यासनन्दन शास्त्री
श्री बिन्देश्वरी शर्मा
मो. 8544088138

संरक्षक
गंगा प्रसाद
सभा प्रधान

कोषाध्यक्ष
सत्यदेव गुप्ता
स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
दूरभाष : 07488199737
E-mail_arya.sankalp7@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स
मो. 9430246879

संपादकीय

आर्यत्व का संचार करें

जो जन्म से लेकर मरणपर्यन्त बनी रहे जो अनेक (व्यक्तियों) में एक रूप से प्राप्त हो, जो ईश्वर कृत अर्थात् गाय, अश्व और वृक्षादि समूह है, वे जाति शब्दार्थ से लिये जाते हैं। महर्षि दयानन्द की जाति के सम्बन्ध में यह विचारधारा शास्त्रसम्मत और एकता के भाव को प्रदर्शित करने वाला है। शास्त्रों के अनुसार एक-एक समुदाय में समानता को दर्शाने वाला जो पदार्थगत् धर्म है, उसी का नाम जाति है। जैसे गाय कहने से सभी गायों का बोध होता है उसी प्रकार हाथी, घोड़ा, मनुष्य आदि। लेकिन मनुष्य मे जो जाति है वह कर्म पर आधारित है। जैसे सोने का काम करने वाला व्यक्ति स्वर्णकार कहलाता है लोहे का काम करने वाला लोहार। परन्तु वही व्यक्ति अगर किसी मंदिर में पूजा करते हुए देखा जाय तो हम उसे स्वर्णकार या लोहार के भाव से नहीं देखते। किसान को देखकर कोई नहीं कह सकता वह किस जाति का है। कोई व्यक्ति को देखकर जाति का बोध नहीं होता कर्मो के अनुसार ही जाति का निर्माण हुआ। लेकिन आज नन्मना जाति व्यवस्था राष्ट्र और समाज को अवनति की ओर ले जा रहा है। जाति के नाम पर आयोग बने हैं, नेता बने हैं, संगठन बने है, दल बने है, विधान बने, यहाँ तक कि जाति के नाम पर वोट पड़ते हैं जाति के अगुआ अयोग्य होकर भी जीत कर जाते हैं विकाश का कार्य अवरूद्ध हो जाता है समाज टूटता है, मानव-मानव से टकराते है जब मौका मिला एक दूसरे पर आघात करते है विश्वशान्ति का पाठ पढ़ाने वाला राष्ट्र तार-तार होता नजर आता है। देश की एकता और अखण्डता की रक्षा के

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	
2.	वेद मंत्र	1
3.	महर्षि दयानन्द	2
4.	आर्यसमाज और भारतीय शिक्षा	7
5.	वीर्य रक्षा	15
6.	ईश्वर से दूरी क्यों?	22
7.	समाचार	29

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

जून

ओ३म्

कोमल वस्त्र

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्।
शिवं ते तन्वे तत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते।।
(अथर्व० 8।2।16)

शब्दार्थ- हे पुरुष! (ते) तेरा (यत्) जो (परिधानन्) शरीर को ढकने के लिए (वासः) कपड़ा है और (याम्) जिस वस्त्र को (त्वम्) तू (नीविम्) कटि के नीचे धोती, लंगोटी आदि के रूप में (कृणुषे) धारण करता है हम (तत्) उस वस्त्र को (ते तन्वे) तेरे शरीर के लिए (शिवम्) सुखकारी (कृण्मः) बनाते हैं जिससे वह वस्त्र (ते) तेरे लिए (संस्पर्शे) स्पर्श में (अद्रूक्ष्णम्) रूखा, कठोर और खुर्दरा न होकर कोमल और मुलायम (अस्तु) हो।

भावार्थ- वैदिक सभ्यता और संस्कृति सर्वप्राचीन है। मनुष्य को ज्ञान और विज्ञान की शिक्षा वेदों से ही प्राप्त हुई। उसने सभ्यता और संस्कृति का प्रथम पाठ वेद से ही सीखा। मनुष्य ने अस्त्र-शस्त्र और नाना प्रकार के यान और यन्त्रों का निर्माण करना वेद से ही सीखा। जिस समय इंग्लैण्ड और अमेरिका के निवासी असभ्य और जंगली थे उस समय भारतवर्ष ज्ञान और विज्ञान में बहुत आगे बढ़ा हुआ था। महाभारत के युद्ध से भारत को ऐसा धक्का लगा कि वह अब तक भी सँभल नहीं पाया है।

प्रस्तुत मन्त्र में कोमल और सुखस्पर्शी वस्त्र बुनने का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है।

मनुष्य दो प्रकार के वस्त्र पहनता है- एक कटि से ऊपर, दूसरे कटि-प्रदेश से नीचे।

ये दोनों प्रकार के वस्त्र इस प्रकार के हों जो शरीर को सुख देनेवाले हों। ये शरीर में चुभनेवाले न हों। सुख देनेवाले वस्त्र वे ही होंगे जो गर्मी और सर्दी से हमारी रक्षा कर सकें और कोमल तथा मुलायम हों।

■

महर्षि दयानन्द का काशी शास्त्रार्थ

पिछले अंक का शेष...

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि-जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- यह आप का संस्कृत है। इसका क्या प्रमाण है, श्रुति वा स्मृति कहिये।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि-जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है। यह जैमिनि का सूत्र है।

स्वामी जी ने कहा कि- यह सूत्र है। यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिए जहां प्रेरणा होती है।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा, तब स्वामी जी ने कहा कि- अच्छा अपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि- धर्म का एक ही लक्षण है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- वह कैसा है? तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा।

तब स्वामी जी ने कहा-धर्म के तो दश लक्षण हैं। आप एक ही क्यों कहते है। तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि- वे कौन लक्षण हैं? इस पर स्वामी जी ने मनुस्मृति का वचन कहा कि धैर्य, क्षमा, दम, चोरी का त्याग, शौच, इन्द्रियों का निग्रह, बुद्धि, विद्या का बढ़ाना, सत्य, और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग। ये दश धर्म के लक्षण हैं। फिर आप कैसे एक लक्षण कहते हैं? तब बालशास्त्री ने कहा कि- हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि-आप अधर्म का लक्षण कहिये? तब बालशास्त्री जी ने कुछ भी उत्तर न दिया। फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि- प्रतिमा शब्द तो है। फिर उन लोगों ने कहा कि- कहां पर है? इस पर स्वामी जी ने कहा कि- सामवेद के ब्राह्मण में है। फिर उन लोगों ने कहा कि- वह कौन सा वचन है?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि- यह है- "देवता के स्थान कम्पायमान होते और प्रतिमा हँसती है इत्यादि। (यह वेद वचन नहीं है किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहाँ भी यह प्रक्षिप्त है, क्योंकि वेदों के विरूद्ध है।)

फिर उन लोगों ने कहा कि-प्रतिमा

शब्द से पाषाणादि मूर्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है। इसलिए प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिए इसका क्या अर्थ है?

तब उन लोगों ने कहा कि- जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है?

इस पर स्वामी ने कहा कि- यह अर्थ है- अब अद्‌भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिए, इन्द्र (त्रातारमिन्द्र) इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं। इन में से प्रति मन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहिये। इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच-पांच क्रम करके अद्‌भुत शान्ति का विधान किया है। जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है। सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्‌भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है। इस पर सब चुप रहे। फिर बालशास्त्री ने कहा कि- जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है उस-उस की शान्ति करने से अद्‌भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है? तब बालशास्त्री ने कहा कि- इन्द्रियां दिखाने वाली हैं। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं। परन्तु 'स प्राची दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र' इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है? तब बालशास्त्री ने कुछ न कहा। फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कहा कि- अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये? तब शिवसहाय जी चुप हो रहे। फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- वेद किससे उत्पन्न हुए हैं? इस पर स्वामी जी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा- किस ईश्वर से? क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से? अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से? इत्यादि।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि- क्या ईश्वर बहुत से हैं? तब विशुद्धानन्द स्वामी जी कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से

लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं? इस पर स्वामी जी ने कहा कि- सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं।

स पर स्वामी जी ने कहा कि- सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं। फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- ईश्वर और वेदों में क्या सम्बन्ध है? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वाभिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है? इत्यादि। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- कार्यकारणभाव सम्बन्ध है। फिर स्वामी विशुद्धानन्द जी ने कहा कि- जैसे मन में ब्रह्म बुद्धि और सूर्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिए। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- जैसे ''मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत'' इत्यादि वचन वेदों में देखने में आते हैं वैसे ''पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत'' इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है? तब माधवाचार्य ने कहा कि- ''उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स् सृजयेथामञ्च'' इति। इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है?। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- वापी, कूप, तडाग और आराम का ग्रहण है। माधवाचार्य ने कहा कि- इससे पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है? इस पर स्वामी जी ने कहा कि- पूर्त्त शब्द पूर्ति का वाचक है। इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शंका हो तो इस मन्त्र का निरुक्त ब्राह्मण देखिए। तब माधवाचार्य ने कहा कि- पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं? इस पर स्वामी जी ने कहा कि- पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता। क्योंकि पुराणशब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- बृहदारण्यक उपनिषत् के इस मन्त्र में कि- ''एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेत दृग्वेदो यजूर्वेदः सामवेदोऽथर्वान्डिरसइति हासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति'' यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि- हां प्रमाण है। फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सब का प्रमाण आया। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं। तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि-

यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- पुस्तक लाइए तब इसका विचार हो। माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है? स्वामी जी ने कहा कि- कैसा वचन है? पढ़िये।। तब माधवाचार्य ने यह पढ़ा। ' ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति'। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं? इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शंका भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है। तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा? इस पर स्वामी जी ने कहा कि- क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि 'अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।'' इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं। तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा? इस पर स्वामी जी ने कहा कि- क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि 'अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यमाने शरीरे।'' इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है। इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिए? इस पर स्वामी जी ने कहा कि- और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है। सुनिये- '' इतिहासपुराण: पचमो वेदानां वेद:।'' इत्यादि में कहा है। तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि- वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो। तब सब चुप हो रहे। इस पर स्वामी जी ने कहा कि- व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा करी है व नहीं? तब बालशास्त्री ने कहा कि- संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि-किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास

किया है। यदि जानते हो तो इसके उदाहरण पूर्वक समाधान कहो? तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा। माधवाचार्य ने दो पत्रे वेदों के निकालकर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि... यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है। यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है? स्वामी जी ने कहा कि- पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्द जी ने पत्रे उठा के स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो। स्वामी जी ने कहा कि- आप ही इसका पाठ कीजिए। तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि- मैं ऐनक के बिना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिये। इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे। इसमें अनुमान है कि 5 पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही यह उत्तर कहा चाहते थे कि- ''पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहता है। इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है, परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा। इसलिए यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं। पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है। इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि 18 (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं सो तो वेद में कहीं ऐसा पाठ नहीं है। इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता।'' कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हम को विलम्ब होता है हम जाते हैं। तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये। इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय हुआ। परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के 4 पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ?।। इति।।

•

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सब की उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

महर्षि अरविन्द ने कहा संसार के महापुरूषों को पहाड़ की चोटियां माना जाए तो दयानन्द सबसे ऊँची चोटी है।

आर्यसमाज और भारतीय शिक्षा-पद्धति

-डॉ० भवानी लाल भारतीय

लाला लाजपतराय ने अपनी पुस्तक 'दुखी भारत' (Unhappy India) में यह बताया है कि अंग्रेजों के भारत में आगमन से पूर्व इस देश में एक व्यवस्थित शिक्षा-प्रणाली प्रचलित थी। गाँव-गाँव में पाठशालाएँ स्थापित थीं, जिनमें छात्र व्यवस्थित रूप से विभिन्न विद्याओं और शास्त्रों का अभ्यास करते थे। कालान्तर में विदेशी शासन स्थापित होने पर शिक्षा की व्यवस्था में कुछ ऐसे परिवर्तन किये गए जिनके कारण इस देश के लोग अपनी अस्मिता को भूलने लगे और उनमें विदेशी संस्कार बद्धमूल होते गए। ईसाई प्रचारकों ने भी शिक्षा में हाथ बँटाया, परन्तु उनका प्रयोजन स्पष्ट ही अपने धर्म का प्रचार करना था। उनके द्वारा कहा गया कि इस शिक्षा के द्वारा उन लोगों को सच्चे ईश्वर तथा ईसा मसीह का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कराया जाएगा जो मूर्तियों की घृणास्पद पूजा में लगे हुए हैं।

भारत की शिक्षा-नीति को पाश्चात्य साँचे के अनुसार ढालने का प्रयास अंग्रेज शासकों ने किया ही, ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने भी लॉर्ड मैकाले के स्वर में स्वर मिलाकर अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का ही गौरव -गान किया। लॉर्ड एम्हर्स्ट को लिखे गए अपने पत्र में उन्होंने संस्कृत के अध्ययन को क्लिष्ट बताते हुए लिखा- "संस्कृत भाषा इतनी क्लिष्ट है कि उसे सीखने में लगभग सारा जीवन लगाना पड़ता है। ज्ञान-वृद्धि के मार्ग में यह शिक्षा कई युगों से बाधक सिद्ध हो रही है। इसे सीखने पर जो लाभ होता है वह इसको सीखने में किये गए परिश्रम की तुलना में नगण्य है।" इसी पत्र में आगे क्रमशः संस्कृत व्याकरण, वेदान्त, मीमांसा, न्याय आदि विषयों के शास्त्रीय अध्ययन की निरर्थकता तथा निस्सारता का प्रतिपादन करते हुए अन्त में उपसंहार-रूप में लिखा गया है- 'यह संस्कृत शिक्षा-प्रणाली देश को अंधकार में गिरा देगी। क्या ब्रिटिश शासन की यही नीति है?

संस्कृत-शिक्षा और स्वामी दयानन्द

जिस समय राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली के प्रचलन का हार्दिक समर्थन किया, नव-जागरण के उसी युग में नवोदय के एक अन्य सूत्रधार स्वामी दयानन्द ने शिक्षा के विषय में अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत

करते हुए देश की परम्परागत शिक्षा-प्रणाली के पुनरुद्धार का अभूतपूर्व प्रयास किया। शिक्षा-शास्त्री के रूप में स्वामी दयानन्द ने शिक्षा-विषयक जो सूत्र अपने लेखों, ग्रन्थों तथा वक्तृताओं में दिये हैं, उनका संकलन और आकलन किया जाना आवश्यक है। अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय और तृतीय समुल्लास में उन्होंने इस विषय को उठाया है। 'अथ शिक्षा प्रवक्ष्याम:' इस सूत्र के साथ द्वितीय समुल्लास का प्रारम्भ होता है तथा अथाऽध्ययनाध्यापनविधि व्याख्यास्याम:' के साथ तृतीय समुल्लास की रचना आरम्भ होती है। दोनों अध्यायों में शिक्षा-विषयक भारत की शास्त्रीय आर्य परिपाटी का विस्तृत विवेचन करते हुए स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मचर्य आश्रम, स्वाध्याय और प्रवचन, अध्ययन-समाप्ति के पश्चात् दीक्षान्त अनुशासन, संस्कृत के शास्त्रीय वाङ्मय का अध्ययन-क्रम और पाठविधि, त्याज्य और ग्राह्य पाठ्य पुस्तकें, स्त्रियों और शूद्रों का शास्त्राध्ययन-अधिकार, स्त्री-शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों का सांगोपांग वर्णन किया है। संस्कृत के पठन-पाठन के लिए स्वामी दयानन्द ने एक विशिष्ट पाठयक्रम निर्धारित किया था। इसका उल्लेख सत्यार्थप्रकाश के अतिरिक्त 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के पठन-पाठन विषय तथा संस्कार-विधि के वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत किया है। पठन-पाठन-प्रणाली का यह विस्तृत निर्देश यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि स्वामी दयानन्द संस्कृत शिक्षा-प्रणाली के मर्मज्ञ थे तथा वे उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते थे।

अपनी इस पाठविधि का क्रियान्वयन करने के लिए स्वामी जी ने स्वयं उत्तरप्रदेश के कई नगरों में संस्कृत-पाठशालाओं की स्थापना की। धनी वर्ग के लोगों को उन्होंने पाठशाला-संस्थापन के पुनीत कार्य में आर्थिक सहायता देने के लिए प्रेरित किया। इन पाठशालाओं का आदर्श प्राचीन गुरुकूल-प्रणाली के अनुरूप रक्खा गया, जिसके अनुसार छात्र और अध्यापक एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में रहकर चरित्र-निर्माण के साथ-साथ शास्त्राध्ययन में प्रवृत्त हो सकें। स्वामी जी ने ये पाठशालाएँ कासगंज, फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, छलेसर और काशी आदि स्थानों में स्थापित की। योग्य अध्यापकों के अभाव तथा आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन में छात्रों द्वारा विशेष अभिरुचि व्यक्त न किये जाने के कारण स्वामी जी को अपने जीवन-काल में ही इन पाठशालाओं को बन्द कर देना पड़ा था।

तथापि यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि संस्कृत के उद्धार हेतु स्वामी जी का पाठशाला संस्थापन का कार्य वस्तुतः श्लाघनीय था। इन पाठशालाओं में आर्यसमाज द्वारा कालान्तर में स्थापित गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के बीज छिपे थे, जिसने भारतीय शिक्षा-क्षेत्र में युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित किया।

स्वामी दयानन्द ने संस्कृत शिक्षा-प्रणाली को सुगम बनाने के लिए पठन-पाठन-व्यवस्था के अन्तर्गत कतिपय पाठ्य ग्रन्थ भी लिखे- ऐसे ग्रन्थों में 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' 'व्यवहारभानु' तथा 'वेदांग प्रकाश' के चौदह भाग उल्लेखनीय हैं। 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' की रचना छात्रों में संस्कृत-सम्भाषण में रुचि उत्पन्न करना तथा उनमें दैनन्दिन विषयों पर संस्कृत के माध्यम से सुगमरीत्या वार्तालाप करने की क्षमता उत्पन्न करने हेतु की। 'व्यवहारभानु' छात्रों और अध्यापकों की आचार-संहिता है जिसमें गुरु-शिष्य-संबंध का विवेचन एवं उनके आचार-व्यवहार, तथा नीति-रीति-विषयक स्वर्णिम सूत्रों का गुम्फन हुआ है। 'वेदांग प्रकाश' पाणिनीय व्याकरण के विविध अंगों को सुगम रूप से सीखने का अद्भुत ग्रन्थ है। स्वामी दयानन्द केवल पुस्तकीय ज्ञानक के ही पक्षपाती नहीं थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि जब तक देश के नवयुवकों को उद्योग, कला-कौशल तथा तकनीकी व्यवसायों की शिक्षा नहीं दी जाएगी, तब तक देश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध नहीं होगा। इसी दृष्टि से उन्होंने कुछ युवकों को जर्मनी भेजने की योजना बनाई ताकि वहाँ रहकर वे औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त कर देश की सम्पन्नता में अपना योगदान कर सकें।

स्वामी दयानन्द के शिक्षा-सिद्धान्त

संक्षेप में स्वामी दयानन्द के शिक्षा-विषयक सूत्रों को इस प्रकार निबद्ध किया जा सकता है-

(1) विद्यार्थी का मुख्य प्रयोजन शास्त्राभ्यास के साथ-साथ चरित्र-निर्माण करना है। चरित्र-निर्माण की शिक्षा गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली में ही सम्भव है, अतः प्राचीन पद्धति के गुरुकुलों की स्थापना आवश्यक है।

(2) पाठ्यग्रन्थों में उन्हीं पुस्तकों का समावेश होना चाहिए जो साक्षात्-कृत-धर्मा, मंत्रद्रष्टा ऋषियों की कृतियाँ हैं। अनार्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन-क्रम में समावेश नहीं होना चाहिए।

(3) ईश्वरीय ज्ञान वेद तथा संस्कृत-शास्त्रों की शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(4) शास्त्रों के साथ-साथ प्राविधिक कला-कौशल को शिक्षा भी जीवन-यापन की

दृष्टि से आवश्यक है।

(5) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। भारत की राष्ट्रभाषा- आर्यभाषा (हिन्दी) ही देश की शिक्षा का सार्वदेशिक माध्यम होनी चाहिए।

(6) बालक और बालिकाओं का सहशिक्षण चरित्र-विघातक है, फलतः हानिकर है।

(7) कन्याओं की शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी बालकों की।

(8) शिक्षा के क्षेत्र में राजा और रंक, गरीब और अमीर का भेदभाव अवांछनीय है। प्रत्येक छात्र को अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का समान रूप से अधिकार मिलना चाहिए।

(9) अवसर और अनुकूलता होने पर विदेशी भाषाएँ सीखना वांछनीय है।

(10) शिक्षा के द्वारा स्वाभिमान, स्वदेश-प्रेम, ईश्वर-भक्ति तथा स्वालम्बन जैसे गुणों का विकास किया जाना अपेक्षित है।

स्वामी जी के दिवंगत होने के पश्चात् उनके स्थानापन्न आर्यसमाज ने अपने शिक्षा-विषयक कार्यक्रम को इसी आधार पर मूर्त रूप दिया।

स्वामी दयानन्द के निधन के पश्चात् उनके स्मारक के रूप में 1886 ई० में डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर की स्थापना हुई जो शीघ्र ही पंजाब के शिक्षा-क्षेत्र में एक अद्वितीय संस्थान बन गया। महात्मा हंसराज जैसे प्रवीण शिक्षाशस्त्रों ने अपना समग्र जीवन अर्पित कर डी०ए०वी० कॉलेज को भारतीय शिक्षा की सफल प्रयोगशाला बनाया। डी०ए०वी० कॉलेज को उन्नत और विकसित करने में लाला लाजपतराय तथा पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे आर्यसमाज के मूर्धन्य चितकों का हाथ रहा है। शीघ्र ही देशभर में डी०ए०वी० संस्थाओं का जाल बिछ गया। दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक संस्थाओं की यह विशेषता रही कि वे पाश्चात शिक्षाप्रणाली के आवश्यक एवं उपयोग तत्त्वों की उपेक्षा नहीं करतीं, साथ ही भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्म की आधारभूत संस्कृत-भाषा तथा आर्य शास्त्रों के शिक्षण की सुचारु व्यवस्था उनमें उपलब्ध रहती है।

डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर की कतिपय विशिष्ट उपलब्धियाँ रहीं। वहाँ का लालचन्द पुस्तकालय संस्कृत के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का एक अपूर्व संग्रह था। डी०ए०वी० कॉलेज के अन्तर्गत शोध-विभाग भी था जिसके निदेशक के रूप में प्रसिद्ध प्राच्य विद्या-विशारद पं० भगवद्दत तथा आचार्य विश्वबन्धु ने अनेक प्राचीन महत्त्वपूर्ण संस्कृत-ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन किया

था। कला–कौशल और औद्योगिक प्रशिक्षण की भी पूरी व्यवस्था इस कॉलेज में थी। आयुर्वेदिक कॉलेज भी डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर का एक अंग था, जिसके द्वारा पुरातन भारतीय चिकित्सा–पद्धति का अध्ययन कराया जाता था।

पंजाब के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के कानपुर, देहरादून, लखनऊ, वाराणसी तथा अन्य प्रदेशों में शोलापुर (महाराष्ट्र), अजमेर (राजस्थान) आदि नगरों में डी०ए०वी० कॉलेजों की स्थापना हुई। कानपुर का डी०ए०वी० कॉलेज तो उत्तर प्रदेश का बृहत्तम शिक्षण–संस्थान है जिसमें सभी संकायों का विधिवत् अध्ययन होता है। डी०ए०वी० कॉलेज के आन्दोलन ने देश को महात्मा हंसराज, प्रिंसिपल साईदास, दार्शनिक–प्रवर डॉ० दीवानचन्द जैसे प्रख्यात शिक्षाशास्त्री प्रदान किये। अन्य उल्लेखनीय आर्यसमाजी शिक्षाशास्त्रियों में प्रिंसिपल सूर्यभानु, डॉ० गोवर्धनलाल दत्त, प्रिंसिपल कालिकाप्रसाद भटनागर, डॉ० दुखनराम आदि के नाम गणनीय हैं।

गुरुकुल शिक्षाप्रणाली

वस्तुतः डी०ए०वी० कॉलेजों की स्थापना के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में पौरस्त्य एवं पाश्चात्य आदर्शों के समन्वय करने की चेष्टा की गई थी। प्रयत्न यह था कि इन शिक्षण–संस्थाओं में प्राचीन संस्कृत–साहित्य, दर्शन, काव्य तथा सम्पूर्ण वैदिक वाग्मय का सांगोपांग अध्ययन कराया जाए। साथ ही भौतिक विज्ञान, सामाजिक ज्ञान तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अध्यन की भी व्यवस्था रहे। परन्तु आर्यसमाज के शिक्षा–समीक्षकों ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि डी०ए०वी० कॉलेज के तत्कालीन संचालक पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान तथा अंग्रेजी के अध्यापन के प्रति जितने सचेष्ट और आग्रहशील हैं, उतने वैदिक और संस्कृत साहित्य के लिए नहीं।

इस दुविधाजनक स्थिति ने गुरुकुल–स्थापना के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्कालीन प्रधान महात्मा मुन्शीराम को प्रेरित किया। महात्मा जी ने स्वामी दयानन्द के शिक्षा–आदर्शों को मूर्तिमान् स्वरूप प्रदान करने के लिए पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा के सम्मुख गुरुकुल–स्थापना–विषयक एक प्रस्ताव रक्खा और उसे क्रियान्वित करने के लिए स्वयं प्राणपण से जुट गए। गुरुकुल के लिए उन्हें यथेष्ट आर्थिक सहायता अविलम्ब उपलब्ध हो गई और उन्होंने गुजराँवला में गुरुकुल स्थापित कर दिया, जो कुछ समय पश्चात् मुन्शी अमनसिंह जी द्वारा

प्रदत्त गंगा-पार रेती पर बसे काँगड़ी ग्राम के निकट अरण्य में चला गया। स्वामी श्रद्धानन्द के तप, त्याग, और परिश्रम ने गुरुकूल-काँगड़ी को देश की एक सर्वोत्तम राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था बना दिया जो प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षाप्रणाली का एक सुन्दर समन्वयात्मक प्रयोग है। गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली के मूल सूत्र निम्न हैं-

(1) यह एक समन्वित शिक्षापद्धति है, जिसमें प्राचीन आश्रम-प्रणाली को आधार बनाकर छात्र के वैयक्तिक चारित्रिक गुणों का विकास किया जाता है। बालक में विद्यमान शक्तियों को विकसित करने का पूर्ण अवसर इस शिक्षाप्रणाली में उपलब्ध होता है। छात्र और अध्यापक का निकटतम सम्पर्क गुरुकुल-शिक्षा का एक प्रधान तत्त्व है। प्राचीन शास्त्रीय शिक्षा के साथ-साथ नवीन ज्ञान-विज्ञान एवं पश्चिमी भाषाओं और दर्शन की समन्वित शिक्षा गुरुकुल की निजी विशेषता है।

(2) गुरुकुल शिक्षाप्रणाली ने शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को कई दशाब्दियों पूर्व हल कर दिया था। गुरुकुल-शिक्षण की एक विशेषता है-बालक की मातृभाषा (राष्ट्रभाषा) के माध्यम से ही उच्चस्तरीय ज्ञान-विज्ञान का शिक्षण। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आज स्वतंत्रता-प्राप्ति के पर्याप्त समय पश्चात् हमारे शिक्षाशास्त्री शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के निर्बाध प्रयोग में संकोच का अनुभव कर रहे हैं, जबकि आज से सौ वर्ष पूर्व गुरुकूल के संचालकों ने इस जटिल समस्या का संतोषपूर्ण समाधान ढूँढ निकाला था। आज विज्ञान की शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को ग्रहण करने मे अनेक आपत्तियों और विपत्तियों की आशंका की जाती है, जबकि गुरुकुल काँगड़ी ने कई वर्ष पूर्व ही स्नातक-स्तर पर विज्ञान की शिक्षा देने हेतु उच्च कोटि के पाठय ग्रन्थों का निर्माण कर लिया था। गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा प्रो० हरिदत्त वेदालंकार आदि विद्वानों ने राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास आदि विभिन्न समाजशास्त्रीय विषयों पर अधुनातन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है।

(3) गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली का एक ध्येय जहाँ चरित्र-निर्माण की दिशा में छात्रों का उचित मार्गदर्शन करना था, वहाँ उसका एक मुख्य प्रयोजन छात्र-समुदाय में राष्ट्रीय भावनाओं की अभिवृद्धि और देशभक्ति के भावों को उद्दीप्त करना भी रहा। यही कारण है कि ब्रिटिश शासकों ने इन शिक्षण-संस्थाओं को हमेशा वक्रदृष्टि से देखा। गुरुकुल के शिक्षा-संचालकों

का भी स्वाभिमान अडिग रहा। अपनी शिक्षा-नीति में वे विदेशी शासकों का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं कर सकते थे, फलत: उन्होंने कभी गौरांग शासकों से आर्थिक अनुदान की न तो याचना की और न किसी अन्य प्रकार की सहायता को स्वीकार किया। अंग्रेज प्रशासक एक बार तो गुरुकुलों के प्रति इतने अधिक शंकाकुल हो गए थे कि भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड चैम्सफोर्ड और संयुक्त प्रान्त के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स मेस्टन को गुरुकुल काँगड़ी की यात्रा कर उसके संचालक महात्मा मुन्शीराम के समक्ष अपनी शंकाओं को प्रस्तुत कर उनका समाधान प्राप्त करना पड़ा था। गुरुकुल काँगड़ी के ही अनुकरण पर कालान्तर में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल चित्तौड़गढ़, गुरुकुल झज्जर आदि की स्थापना हुई। संस्कृत और प्राचीन शास्त्रों से जितने सुयोग्य और ख्याति-प्राप्त विद्वान् इन गुरुकुलों से निकले हैं तथा देश, धर्म, समाज और भाषा संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में गुरुकुल के स्नातकों ने जो अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उसका विशद और यथार्थ समीक्षण अभी भविष्य की वस्तु है। गुरुकुल काँगड़ी के शास्त्र-मर्मज्ञ स्नातकों में पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार (चतुर्वेदभाष्कार), पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ने दर्शनों के महान् विद्वान् पं० उदयवीर शास्त्री, वैदिक विद्वान् डॉ० सूर्यकान्त, अनेक शास्त्र-निष्णात डॉ० हरिदत्त शास्त्री, पं० देवदत्त शर्मोपाध्याय तथा संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् प्रसिद्ध कवि पं० दिलीपदत्त शर्मोपाध्याय जैसी प्रतिभाएँ देश को प्रदान की हैं। गुरुकूल वृन्दावन के उल्लेख-योग्य स्नातकों में स्व० पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, पं० धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री तर्क-शिरोमणि, साहित्यशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र के आकार-ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद और व्याख्या करनेवाले स्व० पं० विश्वेश्वर सिद्धान्त-शिरोमणि तथा संस्कृत में 'दयानन्द-दिग्विजय' जैसे सर्वलक्षणान्वित महाकाव्य के प्रणेता महाकवि मेधाव्रताचार्य के नाम उल्लेखनीय हैं। गुरुकुलों की स्थापना के साथ-साथ शतश: विद्यालय, संस्कृत पाठशालाओं, प्रौढ़ शिक्षणालयों और रात्रि पाठशालाओं की स्थापना और संचालन भी आर्यसमाज की शिक्षा- विषयक महत्त्वपूर्ण देन है। नारी-शिक्षा का क्षेत्र भी आर्यसमाज द्वारा उपेक्षित नहीं रहा। जिस समय देश के पुराणपंथी

और रूढ़िवादी लोग कन्या-शिक्षण को शंका की दृष्टि से देखते थे और इसे ईसाई आचार का अनुकरण समझा जाता था, उसी समय से आर्यसमाज ने कन्याओं के सर्वोच्च शिक्षण हेतु उच्च कोटि के गुरुकुल, महाविद्यालय और कन्या-कॉलेजों की स्थापना की। जालंधर का कन्या महाविद्यालय, देहरादून और हाथरस के कन्या गुरुकुल तथा बड़ौदा का आर्य कन्या महाविद्यालय इसी प्रकार के सफल शिक्षा-संस्थान हैं। आर्यसमाज का करोड़ों रुपया शिक्षा-कार्य में व्यय हो रहा है और उसकी सर्वोच्च संस्थाएँ इन शिक्षण-संस्थाओं का योग्यतापूर्वक संचालन कर रही हैं। कन्या-शिक्षा की ही भाँति दलितवर्ग के लोगों की शिक्षा का आयोजन भी सर्वप्रथम आर्यसमाज ने ही किया। पं० आत्माराम अमृतसरी ने बड़ौदा राज्य में दलितों में शिक्षा का जो प्रचार किया, वह समाज-सुधार के इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है। श्री गंगा अययर ने आर्यसमाज की शिक्षा-संस्थाओं के योगदान का मूल्यांकन करते हुए ठीक ही लिखा है कि आर्यसमाज के विद्यालयों का उद्देश्य राष्ट्रीयता को जागृत करना रहा है। उनके समालोचक भी यह स्वीकार करते हैं कि वे असहयोग के दिनों में अचानक स्थापित हुए उन अल्पजीवी राष्ट्रीय विद्यालयों से भिन्न, वास्तविक शिक्षण-संस्थाएँ हैं। ●

पिछले अंक का शेष....

कविता

इन्द्र बने साधक तो उसको भी स्वाहा हो जाने दो।
उथल-पुथल हो जाने दो हाँ भंग नियम हो जाने दो।
फिर से हर-हर महादेव हर-हर बम-बम हो जाने दो।
अंग गले तो उसकी शल्य चिकित्सा करनी पड़ती है।
विष का असर जलाने को अंगारी धरनी पड़ती है।
मन को मार लहू की गहरी नदी तैरनी पड़ती है।
नीलकण्ठ बनकर मन्थन की कीमत भरनी पड़ती है।
बनकर विश्वामित्र राष्ट्र का रक्त जगाना पड़ता है।
राम और लक्ष्मण से मुहलों को छुड़वाना पड़ता है।
शूर्पणखा की नाक काट रावण मरवाना पड़ता है।
छोड़ साधना सत्लों को ही आगे आना पड़ता है।
एक बर मन मस्त मनीषी को मौसम हो जाने दो।
एक बार फिर से डमरू की डम-डम हो जाने दो।
खुली जटाओं से भस्मासुर को भस्म हो जाने दो।
एक बार पहले तलवारों की झम-झम हो जाने दो।
पीछे शान्ति सुन्दरी वर्षा की छम-छम हो जाने दो।
तलवारों के लिए वैरियों के सिर कम हो जाने दो।
एक बार फिर महादेव हर-हर बम-बम हो जाने दो।

●

- सारस्वत मोहन मनीषी

वीर्य रक्षा

आचार्य अभय देव वेदालंकार

ऋषि दयानन्द के जीवन से हमें ब्रह्मचर्य का ही सबसे बड़ी शिक्षा मिलती है। ऋषि दयानन्द में ब्रह्मचर्य की महिमा ऐसी प्रकट हुई है कि उनकी ब्रह्मचर्य का अर्थ है वीर्यरक्षा। ब्रह्मचर्य का असली अर्थ इससे अधिक विस्तृत है, परन्तु इसका महत्त्व और लाभ भी उतना ही अधिक है। वीर्य वह वस्तु है जो कि सम्पूर्ण शरीर का सारांश है, तेजस्सार है। वीर्य के एक कण में बहुत-से जीवनों को उत्पन्न करने की शक्ति है। तब आप कल्पना कर सकते हैं कि वीर्य कितना जीवन का भंडार है। यदि यह शरीर में रक्षित किया जावे तो हममें कितनी जीवन-शक्ति संचित हो सकती है! स्वामी दयानन्द ने जगत् में आकर जो इतना महान कार्य किया, भारी अज्ञान को हटाया, बहुत-से जीवनों को पलटा, सत्य का डंका बजाया, और अपने जमाने को ही बदल दिया, इनका यदि कोई भौतिक कारण ढूँढा जाय तो वह उनके शरीर में रक्षित किया हुआ वीर्य था। क्या हम आर्यसमाजियों को यह इच्छा नहीं पैदा होती कि हम भी वीर्य-रक्षा करें? नष्ट होती हुई इस इतनी ईश्वर-प्रदत्त शक्ति को रक्षित करें? जिसको यह इच्छा पैदा होती होगी वह तो अपनी इस वीर्य की अनमोल सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए अवश्य एकदम उद्यत होगा। आप पूछेंगे कि हम वीर्य की रक्षा कैसे करें, यह बड़ा कठिन काम है। बेशक यह कठिन काम है, परन्तु इसके उपाय भी जरूर हैं। और जिस सौभाग्यशाली पुरुष को वीर्य-रक्षण की इच्छा रखनेवालों को चिन्ता की कोई जरूरत नहीं हैं, विशेषकर जबकि उसने प्रलोभनों को जीतने का अभ्यास कर लिया है। वीर्य-रक्षा के लिए आहार, बिहार, व्यायाम आदि कैसा होना चाहिए और मनोऽवस्था कैसी रखनी चाहिए, इत्यादि विषय को हम इस लेख में नहीं देख सकेंगे। इन बातों के सम्बन्ध में पाठकगण ब्रह्मचर्य विषय पर विस्तृत लिखी हुई पुस्तकों का स्वाध्याय करके अवश्य लाभ उठावें। परन्तु यहाँ ब्रह्मचर्य के उस एक साधन का हम विचार करेंगे जो कि मेरी समझ में मौलिक साधन है। यह साधन स्वाभाविक है, अतएव प्रबल है। इस साधन के प्राप्त हो जाने पर स्वभावत: वीर्य-रक्षा होती है और अवश्य होती है। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि इसी साधन से सम्पन्न होने के कारण ही स्वामी दयानन्द अखण्ड ब्रह्मचारी रहे थे। यह साधन एक वाक्य में यह है- वीर्य को

किसी शक्ति के रूप में परिणत करना। बिना ऐसा किये वीर्य का सँभालना कठिन है। जब तक हम वीर्य को शक्ति के रूप में नहीं ले आते, तब तक वीर्य के नाश होने की पूरी सम्भावना रहती है। इसलिए वीर्य को वीर्य के रूप में न पड़े रख-कर उसको शक्ति बना देना ही वीर्य-रक्षा का मौलिक उपाय है। वीर्य को शक्ति के रूप में किन उपायों से परिणत करें, यही विचार हम वेद-मन्त्र द्वारा यहाँ पर करेंगे। अथर्व वेद में प्रसिद्ध ब्रह्मचर्य सूक्त है। उसमें ब्रह्मचर्य के विषय में बड़े-बड़े उत्तम उपदेश हैं परन्तु उस सूक्त में से मैं एक मन्त्र के उत्तरार्ध को ही उपस्थित करता हूँ। उससे ही उपदेश ग्रहण करना हमारे लिए बहुत पर्याप्त होगा। वह मन्त्र यह है-

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण
लोकांस्तपसा पिपर्ति।

इस मन्त्र में कहा है "ब्रह्मचारी लोकान् पिपर्ति" - ब्रह्मचारी लोकों को पूर्ण करता है पालित करता है। कैसे? "समिधा, मेखलया, श्रमेण, तपसा" -'समिधा से, मेखला से, श्रम से, तप से- इन चार साधनों से।

यह चारों वीर्य-रक्षा के भी साधन हैं, क्योंकि ये चारों ही वीर्य को शक्ति के रूप में परिणत करने के उपाय हैं। इनमें से पहला उपाय है समिध्। समिध का अर्थ है अच्छी प्रकार से दीप्त होना। सं+इन्ध। हवन की लकड़ियों को भी समिध् इसीलिए कहते हैं क्योंकि वे दीप्त होती हैं। आर्यों में पुरानी प्रथा के अनुसार शिष्य गुरु के पास समिधा लेकर जाता था। उसका मतलब यह था कि माना गुरु अग्निरूप है और शिष्य अपने-आपको समिधा बनाता है और इच्छा करता है कि मुझे आप इसी तरह दीप्त कर दो जैसे कि अग्नि में समिधा डालने से वह समिधा भी अग्निवत् दीप्त हो जाती है। इस प्रकार से यदि आप विचारेंगे तो आप समझ जायेंगे कि यहाँ पर समिध् का अर्थ "अपने-आपको ज्ञानाग्नि से दीप्त करना" है। अपने को ज्ञान से दीप्त करने से हमारा वीर्य ज्ञान के बढ़ाने में खर्च होगा और इस प्रकार वीर्य-रक्षा होगी। इस 'समिध्' की बात को यदि आप पूरी तरह समझना चाहें तो आप अपने सामने दीपक का दृधय लाइये। स्वामी रामतीर्थ जी ने अपने प्रसिद्ध "ब्रह्मचर्य" के व्याख्यान में यह बड़ी उत्तम उपमा दी है। यह उपमा मुझे तब से याद रहती है। दीपक आपमें से हर एक ने जलते देखा है। उसमें तेल होता है, बत्ती होती है और ऊपर से वह जलता है- प्रकाशित होता है, अर्थात् तेल ऊपर से चढ़ कर प्रकाश के रूप में परिणत हो जाता है- प्रकाश बन जाता है। आप

समझ गये होंगे कि तेल के स्थान में हमारे शरीर में वीर्य है। यदि हम अपने-आपको ऊपर से जला दें, अपने-आपको दीप्तज कर लें, तो हमारा वीर्य भी ऊपर चढ़कर ज्ञान बनने में खर्च हुआ करेगा हमारे सिर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वहीं ज्ञान का केन्द्र दिमाग है। लोकों के हिसाब से सिर हमारा द्युलोक है। इसी सिर को हमे दीप्त करना है, जलाना है। इसकी दीप्ति ज्ञान से होती है। जब हमारा सिर ज्ञान से जलने लगेगा तब हमारा वीर्य स्वयमेव वहाँ चढ़ेगा और ज्ञानरूप प्रकाश में परिणत हुआ करेगा। इस प्रसंग में पाठक ऊर्ध्वरेता होने का भाव भी समझ गये होंगे। जो योगी-महात्मा होता है। वे सिर में प्राण भरकर समाधि करते हैं और "ऋतम्भरा" जैसी अत्युच्च, ज्ञान-प्रकाश की अवस्था को प्राप्त करते हैं, अतएव उनका सर्ववीर्य ऊर्ध्वगामी होकर ज्ञान-प्रकाश का ईंधन बनता रहता है। हम साधारण पुरुष यदि समाधि नहीं प्राप्त कर सकते तो हमें अन्य प्रकार से मस्तिष्क को कार्य होना चाहिए, खूब मनन करना चाहिए, गम्भीर विचार करना चाहिए, मस्तिष्क से खूब काम लेना चाहिए, इस प्रकार से हमारा वीर्य भी बहुत-कुछ ज्ञानाग्नि का ईंधन बन सकता है। और वीर्य-रक्षा हो सकती है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि हरएक वस्तु की तरह वीर्य को भी गति हो सकती हैं, एक ऊर्ध्वगति और दूसरी अधोगति। जो लोग वीर्य-जैसी परम पवित्र और जीवन-भंडार वस्तु की अधोगति करते हैं उनकी अधोगति ही होती है, और जो मनुष्य अपने अन्दर इसकी ऊर्ध्वगति करते हैं वे स्वभावत: ऊर्ध्वगति, उन्नति को प्राप्त होते जाते है, जितनी मात्रा में ऊर्ध्वगति करते हैं उतनी ही मात्रा में उन्नति को प्राप्त होते हैं। अत: अपने को ज्ञान से दीप्त कर पूरे यत्न से जहाँ तक हो सके वहाँ तक हमें वीर्य की ऊर्ध्वगति ही प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार 'समिधा' द्वारा हम मूलतया वीर्यरक्षा करते हैं। यह पहला उपाय हमें वेद ने दर्शाया है।

दूसरा उपाय है मेखला। मेखला को हिन्दी में तडागी या तगडी कहते हैं। स्मृति-ग्रन्थों के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए कटिप्रदेश में मेखला बाँधने का विधान है। इसका वास्तविक प्रयोजन क्या है- यह मैं ठीक नहीं जानता। ऐसा सुना जाता है कि यह वीर्य-रक्षा में सहायक होती है, और कई अण्डकोषों के रोगों के लिए रक्षक का काम देती है। परन्तु इससे एक और भाव समझ में आता है, यह है कटिबद्धता का भाव। ब्रह्मचारी को कटिबद्ध रहना चाहिए, हमेशा तैयार-हमेशा

चुस्त रहना चाहिए, न जाने कर्त्तव्य के लिए तैयार, कमर कसे हुए रहना चाहिए। उसे हमेशा जागृत रहना चाहिए, सोते नहीं रहना चाहिए। कटिबद्धता से उल्टा है आलस्य, ढीलापन। जब मनुष्य आलसी होता है, ढीला पड़ा रहता है, तब उसके वीर्यनाश होने की सदा सम्भावना रहती हैं सोते हुए का ही वीर्यनाश होता है। इससे विपरीत जब मनुष्य सदा कर्त्तव्योन्मुख होकर चुस्त रहता है, तब इस कार्य में जो शक्ति खर्च होती है उसे शरीरस्थ वीर्य पूरा करता है, अर्थात् वीर्य इस शक्ति में परिणत होता रहता है। यह वीर्य-रक्षा का दूसरा साधन है। वीर्य को शक्ति में परिणत करने का प्रारम्भ में विवेचन अच्छी तरह हो चुका है। इसलिए अब उसकी विस्तृत व्याख्या की जरूरत नहीं।

तीसरा साधन है श्रम, परिश्रम, मेहनत। यह साफ बात है कि श्रम करने से वीर्य-रक्षा होती है और श्रम से विपरीत आराम-तलबी से- आराम की इच्छा करनेवालों को सदा श्रम करना चाहिए। शारीरिक श्रम, व्यायाम से वीर्य रुधिर में सम्मिश्रत होता है। एवं अन्य मेहनत के कार्य करने से भी वीर्य शक्ति के रूप में खर्च होता है। अतः हमें श्रम के जीवन को बड़ी खुशी से अपनाना चाहिए।

इसके बाद चौथा साधन तप का आता है। यह एक प्रकार से सबसे मुख्य है। ब्रह्मचर्य सूक्त में तप का बार-बार वर्णन आता है। द्वन्द्वों के सहने को तप कहते हैं। अपने कर्त्तव्य-मार्ग मे जो कष्ट आवें उन्हें सहना तप है। यह ब्रह्मचारी को निरन्तर करना चाहिए। गर्मी-सर्दी सहने का, भूख-प्यास सहने का उसे अभ्यास होना चाहिए। इसी प्रकार और नाना तरह के द्वन्द्व हैं जिन्हें कि मनुष्य जितना सहने वाला होगा उतना ही वह वीर्य-रक्षक होगा। उदाहरणार्थ हम शीतोष्ण को सहें, शीत को सह सकें, और गर्मीयस को भी उपकरणों से न सहकर इसी सहन-शक्ति से सहने का अभ्यास करे तो हमारी वीर्यरक्षा होगी। वीर्य का इस प्रकार बहुत उत्तम सद्व्यय होगा। आशा है पाठकगण यहाँ तक के विवेचन से इन चारों उपायों का वीर्य-रक्षा में साधनत्व भली प्रकार से समझ गये होंगे।

शायद कोई पूछें कि हम तप, श्रम आदि कठिन साधनों से ही वीर्य-रक्षा क्यों करें? मैं इस प्रश्न का अर्थ समझता हूँ। यह प्रश्न ठीक है। बिना किसी लक्ष्य के वीर्य-रक्षा भी नहीं की जा सकती। जिसके सामने कोई लक्ष्य नहीं है वह किस लिए ब्रह्मचर्य करे? अतः सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमारा कुछ लक्ष्य होना चाहिए। इस मन्त्र में यह लक्ष्य 'लोकों का

पालन-पूरण' कहा है। असल में प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य अपने लोकों को पूर्ण करना और लोकसंग्रह करना ही है, जिसके लिए उसे ब्रह्मचर्य करना चाहिए। परन्तु सामान्यतया कुछ-न-कुछ लक्ष्य होना भी पर्याप्त है। जिसने अपने जीवन का कुछ थोड़ा-सा भी लक्ष्य बना रक्खा है, वह उसी लक्ष्य के लिए ज्ञान-दीप्ति प्राप्त करेगा, उसके लिए सदा कटिबद्ध रहेगा, सदा श्रम करेगा और तप करेगा, अत: वीर्य-रक्षा को भी प्राप्त करेगा। जिसका जितना भारी लक्ष्य होगा उसके लिए वीर्य रक्षा करना उतना ही आसान होगा। ऋषि दयानन्द तो एक महान् लक्ष्य लेकर दुनिया में प्रविष्ट हुए थे। वे वस्तुत: लोगों का पालन और पूरण करने के ही लिए जन्में थे। उन्हें विषयों की तरफ देखने के लिए भी फुरसत कहाँ थी? इसलिए वे अखण्ड ब्रह्मचारी रहे।

आप पूछेंगे कि हम क्या करें? हम तो दयानन्द जैसे महापुरुष नहीं, हैं, हम तो दुनियां में कोई सन्देश लेकर नहीं आये। मैं कहूंगा कि आप दयानन्द के शिष्य हैं, यही पर्याप्त है। हरएक आर्यसमाजी यह गर्व कर सकता है कि मैं आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्दजी का शिष्य हूँ। दयानन्द हमारे लिए अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। आर्यसमाज ही उनका पुत्र कहा जा सकता है। यदि हम अपने को दयानन्द का पुत्र न मानकर केवल अपने को दयानन्द का अनुयायी मानें, तो भी हम भारी ऋषि-ऋण का बोझ अपने कन्धों पर अनुभव करेंगे। क्या इस ऋण से मुक्त होना हमारा कर्तव्य नहीं हैं, क्या यह छोटा लक्ष्य है? क्या इसके लिए ब्रह्मचर्य की जरूरत नहीं है? आपमें से बहुत-से सज्जन प्राय: गृहस्थ-आश्रम में होंगे, इसलिए वैदिक रीति के अनुसार सन्तान उत्पन्न करना बेशक आपका कर्त्तव्य है। परन्तु इस पितृ-ऋण को उतारने के अतिरिक्त और किसी कार्य में अपने वीर्य का व्यय करना अपने गुरु को कलंकित करना है। आपको ऋषि-ऋण उतारने के लिए गृहस्थ-धर्म करते हुए भी ब्रह्मचारी रहना चाहिए। क्या आप प्रण करेंगे कि हम दयानन्द के अनुयायी ऋतुगामी होने के सिवाय सदा वैदिकधर्म के लिए ब्रह्मचारी रहेंगे? आइये, आज हम ऋषि दयानन्द की ब्रह्मचारी दमकती हुई गुरुमुर्ति को अपने-अपने मन में अच्छी तरह से बिठलाकर उसके सामने इस प्रतिज्ञा करें कि''मैं आपका शिष्य ब्रह्मचारी रहूँगा।'' उनकी ब्रह्मचर्यमयी मानस मूर्ति का बार-बार ध्यान करके इसे अपने में यहाँ तक समा दें कि जब कभी हमारे सामने इस प्रतिज्ञा के तोड़ने का प्रलोभन आवे, पाशविक भोग में फँसने का जोरदार प्रलोभन आवें, तो उससे भी

सहस्त्र गुणा तीव्रता से हमारे सामने हमारे गुरु की यह मूर्ति आ खड़ी हो और वह आकर हमको मना करे, उनकी मन्यु से भरी हुई आँखें हमारी तरफ घरूती हुई हमें दिखाई दें और हमें यह गम्भीर आवाज सुनाई दे कि इस वीर्य पर तुम्हारा अधिकार नहीं है, इस पर वैदिकधर्म का अधिकार है। इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि आप दयानन्द नहीं हैं तो ब्रह्मचारी दयानन्द के शिष्य तो हैं। वैदिक धर्म के पुन:संस्थापक गुरु के अनुयायी तो हैं। यह अनुभव आपको ऐसी स्फूर्ति देगा जिससे कि आपको वीर्य-रक्षा करना बहुत आसान हो जायेगा और वीर्यनाश करना असम्भव हो जायेगा।

यदि आर्यसमाज के सभासद् पितृ-ऋण के उतारने के कर्त्तव्य को छोड़कर सदा ब्रह्मचारी रहें तो आर्यसमाज में जो आज शक्ति है उससे हजार गुणा शक्ति इसमे आ जायेगी।

इस बात में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

ब्रह्मचर्य के दीवानों के प्रति

जो मनुष्य कभी ब्रह्मचर्य के पीछे दीवाना नहीं हुआ है, उसने मेरी समझ में, ब्रह्मचर्य को पूर्ण रूप में अच्छी तरह देखा या समझा नहीं है। ब्रह्मचर्य ऐसी ही मनमोहनी वस्तु है। फिर भी दुनिया में आज ब्रह्मचर्य के दीवाने बहुत थोड़े हैं। भोगवाद का शिकार यह वर्तमान जगत् यद्यपि कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ यत्न भी करता है, परन्तु वह असल में भोग से इतना जर्जरित हो चुका है कि उसमें ब्रह्मचर्य के सूर्य को, एक आँख देख सकने की भी शक्ति नहीं रही है, तो यदि हम संसार के वर्तमान जीवों के अन्दर ब्रह्मचर्य के 'महाव्रत' के लिए तड़प न देखी जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है। किन्तु जगत् में आज ब्रह्मचर्य के दीवाने थोड़े हों या बहुत, पर 'आर्यसमाज' को तो ब्रह्मचर्य का ही गीत गाना है, संसार को यही सन्देश सुनाना है, वह यही गा सकता है, यही सुना सकता है, कोई सुने या न सुने।

इसका कारण स्पष्ट है। संसार को आज ब्रह्मचर्य की जरूरत थी, इसीलिए प्रकृतिमाता ने इस युग में दयानन्द नाम से एक महान् ब्रह्मचारी को जन्म दिया। अत: उस दयानन्द के आर्यसमाज को यदि संसार को कोई संदेश हो सकता हैं, तो वह एक शब्द में ब्रह्मचर्य ही हो सकता है।

जब मैं गुरुकुल में बालक था तो अपनी श्रेणी के कुछ हम सहाध्यायी आपस में सोचा करते थे कि हम ऋषि दयानन्द की तरह ब्रह्मचारी बनेंगे। यह गुरुकुलीय वायुमंडल का प्रभाव था, पर ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है, तब हम

यह न समझते थे। ब्रह्मचर्य कितना कठिन है, यह भी नहीं समझते थे। ज्यों-ज्यों बड़े होते गये, त्यों-त्यों ब्रह्मचर्य की महिमा के साथ-साथ उसकी कठिनता को भी समझते गये। परन्तु महाविद्यालय की ऊँची श्रेणी में पहुँचकर जब मैंने वेद का यह ब्रह्मचर्य-सूक्त पढ़ा और मनन किया तो मेरे ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी विचारों में सबसे अधिक क्रान्ति आयी। जिस उदात्त और व्यापक ब्रह्मचर्य का वर्णन मैंने इसमे पाया, उससे मेरी दृष्टि खुल गयी। ब्रह्मचर्य के लक्ष्य को सामने रख़कर चलने को एक साफ रास्ता मुझे मिल गया। इस सूक्त के अध्ययन से जो सबसे बड़ा प्रभाव मुझपर पड़ा, वह यह था कि दुनिया में मैं जो यह सुनता रहता था कि सर्वथा अखण्ड ब्रह्मचर्य असम्भव है, वह मेरा भ्रम हट गया। मैं तब से न केवल यह देखने लगा कि पूर्ण ब्रह्मचर्य सम्भव है, किन्तु यह भी अनुभव करने लगा कि ब्रह्मचर्य ही स्वाभाविक है, प्राकृतिक है। हम अपनी उच्च प्रकृति से देखें तो यही प्राकृतिक है। मैं यहाँ तक कहने को उद्यत हूँ कि जैसे साधारण लोग आँख के झपकने को स्वाभाविक समझते हैं, परन्तु आश्चर्य, आदि की अवस्था के दृष्टान्त से जान सकते हैं कि एक ऐसी अवस्था भी आती है जबकि एकतत्त्व के देख लेने से स्वभावत: निमेषोन्मेष बन्द हो जाता है, इसकी आवश्यकता ही नहीं रहती, मनुष्य तब 'अनिमेष' अथवा 'देव' हो जाता है, इसी तरह अपने उच्च स्वरूप को देख लेने पर, पा लेने पर, निर्विकार अवस्था ही स्वाभाविक हो जाती है, विकार का कुछ काम ही नहीं रहता।

●

जीवन की आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को वेद का अध्ययन करना चाहिए।

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान। नारी से ही उपजे, ध्रुव प्रहलाद समान।

न सुध-बुध की ली, और न मंगल की ली। घर से निकल राह जंगल की ली।

वैदिक धर्म की जय,
दयानन्द की जय।

ईश्वर से दूरी क्यों?

- प्रकाश आर्य, मऊ

ईश्वर कैसा है जिस परमात्मा से हम मिलना चाहते हैं वह कैसा है, उसे कैसे पहचाना जा सकता है, उसको मिलने के पहले यह जानना परम आवश्यक है। किसी का ठीक ज्ञान व पहचान न होने से पास की वस्तु से भी हम दूर रहते हैं। जैसे, एक बार किसी व्यक्ति के घर कोई मेहमान दूसरे शहर से आने वाला था। उसको लाने के लिए उसने अपने सेवक को रेलवे स्टेशन भेज दिया, रेल आने का समय हो चुका था इसलिए जल्दी-जल्दी में मेहमान को लाने की बात को सुनते ही सेवक रेलवे स्टेशन पहुँच गया। रेल आई सारे यात्री प्लेटफार्म से बाहर निकल गए। वह सेवक वहाँ खड़े-खड़े यात्रियों को देखता रहा। फिर थोड़े समय पश्चात् खाली हाथ घर लौट आया। वह आकर अपने स्वामी से बोला कि मेहमान तो नहीं मिले। तभी एक सज्जन जो वहाँ बैठे थे उन्हें बताते हुए स्वामी ने कहा- ''अरे भाई, ये ही तो आने वाले थे।'' इस पर सेवक बोला- ''अरे! इन्हें तो मैने वहाँ देखा था, परन्तु मुझे क्या मालूम था कि यही आने वाले थे।'' देखिए वह व्यक्ति मेहमान को सामने रहने पर भी पहचान नहीं पया क्योंकि उसके बारे में उसे पूर्व से जानकारी नहीं थी। आज हमारी स्थिति भी ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ ऐसी ही है। एक शायर ने ईश्वर के बारे में लिखा है-

''मैं और मेरा यार एक ही गली में रहते हैं,
पर फिर भी मिलने को तरसते हैं।''

इसलिए परमात्मा से भेंट करने की जो इच्छा रखते हैं, उनके लिए पहला सुझाव यही होगा कि वह परमात्मा कैसा है, पहले यह अच्छी तरह जान लेवें, ताकि उसे जानने में भ्रम न हो।

ईश्वर और धर्म के सम्बन्ध में किसी भी बात पर आँख मूँदकर विश्वास कर लेना प्रायः अच्छा माना जाता है, जो व्यक्ति ईश्वर और धर्म का स्वरूप जैसा भी, जिस रूप में भी वह समझ रहा है उसे वैसा ही मान लेने में ही अपनी भक्ति हो गई मान लेता है। और मान लेता है कि वह धर्मात्मा है, भक्त है। समाज भी ऐसे व्यक्ति को ही श्रद्धालू कहता है, उसे ही आस्तिक मानता है। और जो व्यक्ति इसमें तर्क करे, शंका करे, समझने का प्रयास करे तो समाज उसे नास्तिक और धर्म-विरोधी मानता है, प्रायः यह मान्यता समाज में चल रही है।

परन्तु किसी बात को बिना सोचे-समझे

सत्य-असत्य पर विचार किए बिना, आँख मूंदकर मानना मनुष्यता का गुण नहीं है, यह तो भेड़चाल है। भेड़ सिर्फ चर्म चक्षुओं के आधार पर आगे चलने वाले को देखकर आगे बढ़ती है, वहाँ ज्ञान चक्षु शून्य होते हैं। "पश्यति सा पशुः" जो सिर्फ देखकर ही चले वह पशु है। जरा विचार करें! कहीं हमारी स्थिति भी ऐसी तो नहीं है? प्रायः व्यक्ति ऊपरी रूप देखकर ही प्रभावित हो जाता है। आज का समाज किसी बड़े पद पर बैठे व्यक्ति को या अति सम्पन्न व्यक्ति को देखकर, आडम्बर से प्रभाव डालने वाले कार्यक्रमों की सजावट से प्रभावित होकर, कार्य की विशालता और भीड़ को ही देखकर ही वहाँ आकर्षित हो जाता है और वहीं अच्छाई होना मान लेता है। वह उसके गुण दोषों पर विचार नहीं करता न उन्हें वह जानना चाहता है, मात्र भावना के प्रवाह में उनका अनुसरण करने लगता है और वहीं अच्छाई होना मान लेता है।

किन्तु यह ठीक नहीं। पद, पैसा, भीड़ सजावट तो किसी गलत स्थान पर भी पायी जा सकती है। मानवता का गुण जो मननशीलता है। किसी भी बात पर उचित-अनुचित का विचार व चिन्तन करना, सत्य-असत्य के आधार पर निर्णय कर फिर उसे मानना चाहिए। अर्थात् आँखें मूंदकर नहीं अपितु ज्ञानचक्षु से किसी भी बात पर विचार कर निर्णय करना मानवता का गुण है। धर्म व ईश्वर के नाम पर आदमी भीड़ देखकर कोरी भावना में बहकर प्रभावित हो जाता है, परन्तु जब सत्यता का पता चलता है तो पछताता है, रोता है। गलत मार्ग पर चलते हुए कई व्यक्ति जिन्दगी बिता देते हैं, उनका जीवन निष्फल होकर रह जाता है। कुछ ऐसे एक शायर ने लिख-

जब तक जिन्दगी को ना समझा, जी लिया,
जब आ गई समझ, तो बेमौत मर गया।

किसी भी सम्बन्ध में जहाँ सत्य का पूर्ण बोध हो वहाँ मान्यता में दृढ़ता, निश्चितता होगी तथा आत्मबल ऊँचा होगा और स्थायित्व होगा। जहाँ पूर्ण जानकारी नहीं होगी वहाँ भ्रम रहेगा, और भ्रम आपके विचारों को अस्थिर और पुरुषार्थ को कमजोर बना देता है, फिर उसमें आत्मविश्वास नहीं रहता। इसलिए कहा गया-

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हंसाय।।

इसलिए बिना सत्य-असत्य का विचार किए धर्म को, ईश्वर को मानना मात्र प्रयास की श्रेणी में आता है। इसी बात को आचार्य मनु ने कुछ ऐसे कहा- **'यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म वेद नेतरः।'** अर्थात्-ज्ञान की कसौटी पर

तर्क-वितर्क के द्वारा सत्य को जानकर धर्म को मानें।

व्यक्ति छोटी-सी बात पर कई बार सोचता है, फिर उसे करता है। कोई वस्तु खरीदने के पहले कई जगह उसे ढूँढता है, जहाँ भाव ठीक हो, वस्तु अच्छी हो, फिर वहाँ से वह खरीदता है। परन्तु हमारी ईश्वर के सम्बन्ध में स्थिति इसके विपरीत है। ईश्वर जो जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू है, जो जीवन को दिशा व आत्मबल देता है, उसको बहुत महत्त्व नहीं देते। उसके सम्बन्ध में जिसने जो हमें बताया, जैसा बताया या जैसा करते हुए हमने दूसरों को देखा, तत्काल उस पर विश्वास कर लेते हैं। यह जानने का प्रयास ही नहीं किया कि जो मान रहे हैं, देख रहे हैं, वह कितना सही है? ऐसा मानना सार्थक है भी या नहीं है? परन्तु ध्यान रहे, यदि ईश्वर जैसा है, उसे वैसा नहीं समझा, वैसा नहीं जाना और यूँही मानते रहे तो फिर आप ईश्वर को नहीं उसकी जगह कुछ और मान रहे हैं, और ईश्वर को मानने का भ्रम पाल रहे हैं।

लोग बहुत कुछ समझाते हैं, और बिना सोचे हम अपनाते हैं। पर जब हकीकत जानी, तो फिर आँखो मे आँसू ही आते हैं।।

सुधी पाठकगण! पूर्ण मानसिकता बनाकर यह समझने का प्रयास करें कि वास्तव में ईश्वर कैसा है, और ईश्वर कौन हो सकता है? एक और निवेदन है पुस्तक के विचार मानव जीवन से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए अपने विचारों को स्वतन्त्र रखकर थोड़ी गम्भीरता से इसे पढ़ें तो ही आपको इन विचारों का लाभ होगा।

किसी भी वस्तु, स्थान, या व्यक्ति को पहचानने की प्रथम आवश्यकता है, उसका स्वरूप, उसकी उपयोगिता, उसके कार्य, उसके गुण और स्वभाव की जानकारी होना। अनेक वस्तुएँ एक समान दिखाई देती हैं, जो भ्रम उत्पन्न करती हैं। जैसे देखने में शक्कर, नमक, सोडा, रासायनिक खाद जो सफेद दानेदार होती है, एक जैसे ही दिखाई देते हैं। शुद्ध घी व वनस्पति घी जो नकली है, वह भी एक समान दिखाई देते हैं, एसे अनेक उदाहरण हैं। किन्तु उन सबके गुण, कर्म, स्वभाव, परिणाम की सही जानकारी होने से उनको सही रूप में हम पहचान सकते हैं।

ठीक इसी प्रकार ईश्वर के प्रति भ्रम नष्ट करने के लिए परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव की ठीक से जानकारी होने पर ही हमें उसके सत्य स्वरूप का बोध हो सकता है। ऐसा ज्ञान होने पर, फिर उसके नाम पर भ्रमित होकर हमें धोखा नहीं होगा।

आइए परमात्मा कैसा है? इस सम्बन्ध में संसार की सर्वोत्तम व प्रथम संस्कृति के मूल, धर्म के आधार, सनातन, ईश्वरीय ज्ञान "वेदो" में क्या बताया गया है, पहले इस पर ध्यान देते हैं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण
मस्नाविꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी
परिभूः स्वंयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

-यजु० 40।8

इस मन्त्र का अर्थ है- वह ब्रह्म, सर्वशक्तिमान् अर्थात् वह सारी शक्तियों का स्वामी है। स्थूल, सूक्ष्म और शरीर से रहित अर्थात् वह शरीर वाला नहीं है, इन आँखों से उसे देखा नही जा सकता है, उसे छुआ भी नहीं जा सकता है, वह निराकार है। वह निराकार है इसलिए उसके टुकड़े नहीं हो सकते। छिद्र रहित जिसके दो टुकड़े नहीं हो सकते नाड़ी आदि बन्धन-रहित है, अविद्या आदि दोषों से रहित, सर्वज्ञ, सदा सब जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला है। दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला है, अनादिस्वरूप, वह सदा है, सदा रहेगा, वह न नष्ट होता है, न जन्म लेता है, जिसकी संयोग से उत्पत्ति और वियोग से विनाश नहीं होता, जिसके माता-पिता कोई नहीं, जिसका गर्भवास, जन्म, वृद्धि और क्षय नहीं होते, वह परमात्मा सनातन है। उसकी उत्पत्ति या विनाश नहीं हो सकता, वह उत्पत्ति व विनाश रहित है, जो वेद के द्वारा सब पदार्थो का अच्छी तरह उपदेश करता है। वही परमात्मा तुम्हारी उपासना के योग्य है। "कण-कण में जो व्यापक है, सिन्धु की जल तरंगों में समाया है, फूलों में बसी उसकी ही सुगन्ध है।" ऐसा सर्वव्यापक जो है वही परमात्मा है।

इस मन्त्र के पश्चात् थोड़ा इस पर विचार करें कि क्या किसी शरीरधारी (व्यक्ति) में ये सब गुण पाये जा सकते हैं? निश्चित ही नही। क्या किसी जड़ वस्तु में ये गुण पाये जा सकते हैं? निश्चित ही नहीं। क्या किसी एक स्थान पर छोटे-से आकार वाली वस्तु के अन्दर समस्त जग समविष्ट हो सकता है? निश्चित ही नहीं। क्या जन्म और मृत्यु के बन्धन में बन्धी कोई भी वस्तु या पुरुष में इतनी विशालता व सदा एक समान बने रहने का सामर्थ्य हो सकती है? निश्चित ही नहीं, क्योंकि यह सारे गुण किसी साकार वस्तु में हो ही नहीं सकते। ये सब सिर्फ उस निराकार सर्वशक्तिमान् ईश्वर में ही है, अन्यत्र कहीं नहीं, किसी में नहीं।

वह परमात्मा कितना विशाल है, उसकी क्या स्थिति है इस सन्दर्भ में यजुर्वेद के

मन्त्र में परमात्मा का वर्णन कुछ ऐसा किया-

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

- यजु- 13.4

भावार्थ- हे मनुष्यों! सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् है, उसका एक मात्र पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति से पूर्व भी विद्यमान था। जिसने सूर्य से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जगत को उत्पन्न किया है। उसी परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। अर्थात् जिसमें इस प्रकार का सामर्थ्य हो वहीं परमात्मा है।

वह कितना व्यापक है, उसकी कितनी क्षमता है, वह क्या करता है के सम्बन्ध में देखिए मन्त्र बताता है-

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभित येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

-यजु० 32।6

अर्थात्- जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि का धारण किया और जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण किया है, और जिस ईश्वर ने दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक-लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माणकर्त्ता और भ्रमण कराता है। हम लोग ऐसे सुखदायक कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

उस परमात्मा से हमारे अनेक रिश्ते व सम्बन्ध हैं, जो किसी मनुष्य के दूसरे मनुष्य से नहीं हो सकते। यह वेद मन्त्र में स्पष्ट किया है-

स नो बनधुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽअतमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥

-यजु० 32।10

अर्थात्- हे मनुष्यों! वह परमपिता हम सबका भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् को उत्पन्न करने वाला, वह सब कामों का पूर्ण करनेहारा, सम्पूर्ण लोक मात्र (जल, थल, नभ) और नाम, स्थान, जन्मों को जानता है, जिस सांसारिक सुख- दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्ष स्वरूप को धारण करनेहारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, हम सभी लोग मिल के

सदा उसकी भक्ति किया करें।

परमात्मा का कोई निश्चित स्थान नहीं कि वह अमुक- अमुक स्थान पर मिलेगा वहाँ जाकर ही उसे पाया जा सकता है। परमात्मा यत्र-तत्र सर्वत्र है, तीनों लोकों में उसकी सत्ता है, उसकी व्यापकता, विशालता से सम्बन्धित एक और वेद मन्त्र इस सम्बन्ध में देखें-

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै जयेष्ठाय
ब्रह्मणे नमः॥

-अथर्व० 10।7।32

अर्थात्- भूमि जिसका पैर है और अन्तरिक्ष पेट है, द्युलोक को जिसने अपना सिर बनाया है, उस महान् ब्रह्म को मेरा प्रणाम है।

मन्त्र के अनुसार जिसमें इतनी महानता हो, विराट् हो उसे ही ईश्वर समझना चाहिए।

इस प्रकार सिर्फ एक मात्र परमात्मा ही समस्त जगत् का अधिपति है, स्वामी है। उसकी महानता का वर्णन करते हुए मन्त्र में पुनः बताया है-

ईशा वास्यमिदꣲसर्वं यत्किच
जगत्यां जगत्।

-यजु० 40।1

उस सर्वव्यापक परमात्मा के अन्तर्गत ही समस्त जगत् है अथवा उस परमात्मा के द्वारा ही यह जगत् आच्छादित है। वेद के ही इन विचारों के अनुसार आदि जगत् के प्रथम विद्वान् आचार्य ब्रह्मा के पुत्र मनु के विचार भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने ईश्वर के कार्यों व उसकी विशालता के सम्बन्ध में आचार्य मनु ने कहा-

आत्मैव देवतः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्म योगं शरीरिणाम्॥

-आचार्य मनु 12।199

अर्थात्- परमेश्वर ही सब व्यवहार का वे पूर्वोक्त देवताओं को रखने वाला है, उसी में सब जगत् स्थित है। वही सब मनुष्यों का उपासना योग्य देव है, वही सब जीवों को पाप-पुण्य के फलों का देनेवाला है।

उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि वह परमात्मा कितना विशाल है, जो समस्त विश्व, देवताओं का स्वामी है और वही सबका उपास्य है और उसके जैसा कोई और नहीं। ईश्वर के कार्य के सम्बन्ध में आचार्य मनु पुनः कहते हैं-

एषः सर्वाणि भूतानि
पंचभिर्व्याप्य मूर्तिभिः।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति
चक्रवत्॥

-आचार्य मनु 12।124

वह परमात्मा पचमहाभूतों से सब प्राणियों को युक्त करके अर्थात् उनकी उत्पत्ति करके और उनमें व्याप्त रहकर उत्पत्ति, विशुद्धि

और विनाश करते हुए, सदा चक्र की तरह संसार को चलाता रहता है। मनु के अनुसार प्रत्येक प्राणि में भी उस परमात्मा का निवास है।

ईश्वर की जिस प्रकार की महानता और अपार शक्ति का वर्णन किया गया, वह उसके अतिरिक्त किसी अन्य में हो ही नहीं सकती। परमात्मा की विशालता व कार्य जो बताए, ऐसा करनेवाला भी कोई अन्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि ईश्वर को समस्त विश्व का निर्माता, रक्षक, पालक व सृष्टि का प्रलय करने की शक्ति रखनेवाला बताया है। सभी जगह, वह जन्म नहीं लेता, वह मरता नहीं, उसका कोई आकार नहीं, ये सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, पहाड़, समुद्र, वनस्पति सभी उसकी कृति है। यह अद्वितीय कार्य उसकी महानता का हमें बोध कराते हैं। इसलिए जो ऐसा है, जिसमें ये सब गुण, कार्यक्षमता हो, बस उसे ही परमात्मा मानना चाहिए। परमात्मा के सम्बन्ध में उसकी विशालता और कार्यों की पूर्ण जानकारी न होने की कारण ही हम उसके समान दूसरों को मान्यता दे देते हैं, वस्तुओं को, मनुष्यों को भी अज्ञानतावश ईश्वर समझ रहे हैं।

ईश्वर कैसा है, साकार है या निराकार?

परमात्मा को माननेवालों में एक सबसे बड़ा भेद निराकार और साकार का है। तो आइए अब विचार करते हैं कि, वह ईश्वर साकार है या निराकार। आज परमात्मा के सम्बन्ध में इस बात को लेकर आपस में बड़ा विरोध है। विचार न करने के बात को लेकर आपस में बड़ा विरोध है। विचार न करने के कारण ईश्वर को साकार मानने से हमने वस्तुओं, व्यक्तियों को भी परमात्मा मानकर उनके व ईश्वर के मध्य का अन्तर ही समाप्त कर दिया। परमात्मा की जगह व्यक्ति पूजा व जड़ वस्तुओं की पूजा करने लगे। इसलिए ईश्वर का स्वरूप कैसा है, इस महत्त्वपूर्ण विषय को समझना आवश्यक है।

ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक विचारधाराएँ प्रचलित हैं। एक विचार के अनुसार ईश्वर साकार है, अर्थात् उसे देख सकते हैं, छू सकते हैं। उसका भौतिक रूप है, वह बार-बार जन्म लेता है, अवतार लेता है, मनुष्य लीला करते हुए हमारे बीच आता है, कभी प्रकट होकर दर्शन दे देता है, कभी-कभी भक्त की रक्षा करने हेतु वह किसी भी रूप में आकर मदद कर जाता है। इस प्रकार की अनेक बातें ईश्वर को साकार बताने के पक्ष में प्राय: सुनने में आती हैं। दूसरी मान्यता के अनुसार ईश्वर निराकार है- उसकी कोई आकृति नहीं है, कोई रूप नहीं है, उसे इन चर्म चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता, न वह जन्म लेता है, न कभी मरता है, उसकी तो इस आत्मा से अनुभूति की जा सकती है। • **शेष अगले अंक में....**

अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक धर्मप्रचार

आर्य समाज कलैया बारा (नेपाल) में अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक प्रचार कार्यक्रम वैशाख कृ० 14,15,16 व वैशाख शुल्क 01 संवत् 2070 विक्रमी को चतुर्दिवसीय वेद प्रचार व गायत्री महायज्ञ दिनांक 8 से 10 मई 2013 तक बड़े धूमधाम के साथ सुसम्पन्न हुआ।

इस समारोह में आर्यजगत् के लब्धप्रतिष्ठ वैदिक विद्वान् आचार्य डॉ० व्यासनन्दन शास्त्री (मुजफ्फरपुर), महादेशक पं० रामचन्द्र सिंह क्रान्तिकारी, प्रसिद्ध भजनोपदेशक पं० दयानन्द सत्यार्थी, भजनोपदेशिका बहन अंजू सुमन (समस्तीपुर), सुमधुर गायिका नैन श्री प्रज्ञा (देवरिया, उ० प्र०), उनकी मण्डली, तबलावादक श्री टीपूलाल आर्य, युवा भजनोपदेशक पं० संदीप आर्य (पानीपत, हरियाणा) आदि के वेद प्रवचन, उपदेश व भजनोपदेश का कार्यक्रम अत्यन्त प्रभावपूर्ण व चित्ताकर्षक हुए।

प्रात: काल 8 से 10 बजे तक डॉ० व्यासनन्दन शास्त्री वैदिक के ब्रह्मत्व में वैदिक महायज्ञ सम्पादित हुआ। सहयोगी आचार्य पं० ज्ञानेन्द्र आर्य पुरोहित थे। सैकड़ों आर्य नर-नारियों ने वेद मन्त्रों के साथ विश्व कल्याणार्थ आहुतियाँ प्रदान कीं। तत्पश्चात् 02 बजे से सन्ध्या 6 बजे तक तथा रात्रि 7 बजे से 11 बजे तक समागत विद्वानों तथा विदुषियों के प्रवचन भजनादि कार्यक्रम होते रहे।

स्थानीय आर्यसमाजों में मुख्य रूप से आर्यसमाज बीरगंज के मंत्री श्री श्यामकिशोर आर्य व संरक्षक श्री मोहन लाल राज्यपाल ने भी अपने विचारों से श्रोताओं को लाभान्वित किया। सहयोग प्रदान करने वालों में आर्यसमाज कलैया-बारा (नेपाल) के प्रधान श्री बिन्देश्वरी आर्य का बड़ा सराहनीय प्रयास रहा। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रीय व समाजिक संगठनों में भी भाग लिया। दर्जनों भर नारियों ने नशा-हिंसा छोड़कर शाकाहारी जीवन जीने का ब्रत लिया और, यज्ञोपवीत धारण कर वैदिक धर्म में दीक्षित हुए।

नूतन गृह प्रवेश वैदिक रीति से सम्पन्न

ज्येष्ठ कृ० 13 संवत् 2070 तद्नुसार 06 जून 2013 दिन गुरूवार की पटना जिलान्तर्गत गुलजारबाग, अखिलेशनगर, दीपनगर मोहल्ले में लखना आर्यसमाज की प्रधान श्रीमती शीला देवी आर्या द्वारा आयोजित नूतन गृह प्रवेश वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। गृह स्वामी श्री दिनेश कुमार आर्य व उनके पुत्र मनीष कुमार पटेल व पत्नी श्रीमती शिम्पी आर्या ने मुख्य यजमानत्व निभाया। नूतन गृह प्रवेश को वैदिक रीति से सम्पन्न कराने वाले मुख्य आचार्य प्रो० डॉ० व्यासनन्दन शास्त्री वैदिक (मुफ्फरपुर) एवं पं० विनोद शास्त्री थे। इस कार्यक्रम में सभी विधियों की सम्यक् व्याख्या के साथ वैदिक यज्ञ व गृह प्रवेश के महत्व पर चर्चा करते हुए डॉ० शास्त्री ने कहा कि जहाँ जिस गृह (घर) में वेदमन्त्रों से यज्ञ-हवन होता है। वैदिक विद्वानों का सत्कार होता है। जीवित पितरों का सत्कार व सेवा होती है, वहीं स्वर्ग (सुख-विशेष) होता है। यज्ञ से घर के वातावरण में पवित्रता का संचार होता है। रोग- शोक व्याधि नष्ट होकर नीरोग, प्रसन्नता का संचार होने लगता है। युग प्रवर्तक वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती में गृहस्थ को सभी आश्रयों का आधार मानते हुए उनके कर्तव्यों का जहाँ वर्णन किया है वहीं नूतन गृह-निर्माण व प्रवेश पर भी विशेष बल दिया है। इसीलिए सभी गृहस्थ्यिों को इसको स्वीकार करना चाहिये तभी वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार होकर आर्य वैदिक संस्कृति का विस्तार होगा। कार्यक्रम में लखना आर्यसमाज के मंत्री श्री ललन सिंह आर्य व अनेक गणमान्य आर्य सज्जन व माताएँ-बहनों ने प्रवचन-भजन से लाभ उठाया।

डी.ए.वी. इन्टर स्कूल, दानापुर की प्रबन्ध समिति गठित

विगत 21 मई 2013 को डी.ए.वी. इन्टर स्कूल, दानापुर की प्रबन्धकारिणी जी समिति का गठन सत्र 2013-16 हेतु विधिवत कर लिया गया है जिसमें श्री गंगा प्रसाद पूर्व एम. एल. सी. को अध्यक्ष एवं श्री सत्यदेव प्रसाद गुप्त को सचिव चुना गया है। श्री राम बाबु प्रसाद को लेखानिरीक्षक के अतिरिक्त सर्व श्री राम विशुन सिंह, विजय कुमार गुप्ता, सुरेन्द्र कुमार सिन्हा, संजय कुमार सिंह, विधाभूषण एवं सुरेश प्रसाद गुप्ता सदस्य चुने गए।

श्रीमद् दयानन्द अनाथालय का चुनाव सम्पन्न

आगामी तीन वर्षो के लिए श्री मद्यानन्द अनाथालय, दानापुर का पुनर्गठन कर लिया गया है जिसमें श्री ज्ञानेश्वर प्रसाद को प्रधान एवं श्री सुरेश प्रसाद गुप्त को मंत्री चुना गया। इसमें श्री विजय कुमार गुप्ता उप प्रधान, श्री पारसनाथ मेहता उप मंत्री, श्री कृष्णा चन्द्र केशरी- कोषाध्यक्ष एवं श्री रामेश्वर प्रसाद अंकेक्षक चुने गए हैं।

आवश्यकता

श्री दयानन्द अनाथालय दानापुर के लिए एक प्रबन्धक की आवश्यकता है। अनुभवी व्यक्ति को प्राथमिकता दी जायगी। आर्य समाज के क्रिया कलापों तथा वैदिक यज्ञ विधान का ज्ञान और वेद प्रचार कार्य की जानकारी अनिवार्य है। आवश्यकतानुसार वेतन देय होगा।

सुरेश प्रसाद गुप्त

(मंत्री)

सूचना

धर्म प्रेमी सज्जनों,

ईश्वर की असीम कृपा से हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी आर्य समाज ठिकरौल का बारहवाँ वार्षिकोत्सव ज्येष्ठ शुक्ल 5 एवं 6 वि० सम्वत् 200 के तदनुसार दिनांक 13 एवं 14 जून 2013 को सम्पन्न हो गया। जिसमें वैदिक भजनोपदेशक श्री ***सत्य प्रकाश आर्य*** (व्यापुर) एवं स्वतंत्रता सेनानी ***श्री शिव प्रसाद आर्य मुनि जी***, ***विनोद कुमार शास्त्री*** फतुहाँ एवं वैदिक प्रवक्ता ***सुश्री विमला आर्याणी*** (पटना) एवं ***केशव प्रसाद आर्य वानप्रस्थी*** (चमंडी) भी पधार कर अपने अमृतमय वचनों से सम्पूर्ण इस ग्रामीण क्षेत्र को आनन्दित कर दिया।

करो वेद प्रचार
अमृत बरसेगा।

जागो सारे के सारे

हे दयानन्द के मानस पुत्रों तुम्हे जगाने आये है,
क्यों बैठे खमोश उठो हुंकार लगाने आये है।
बजे नगाड़ा पुनः ऋषि का गूंज उठे धरती अम्बर,
निकल पड़ो सीना ताने, हो रथारूढ़ वैदिक रथ पर
चलो चले सिंह नाद करें हाथों में ओ३म् ध्वजा लेकर।
धूम मचा दें भू मण्डल पर शीश हथेली पे रख कर।
लक्ष्य हमारा है दुनिया को आर्य बनाने आये हैं ।
तेरे ही कारण वसुधा में बजी वेद शहनाई।
जागा स्वाभिमान देश का युवकों में अंगड़ाई
प्रत्याक्रमण करने की पावन मंत्र ऋषि ने सिखलाई।
बढ़ा चला निर्भीक कारवां सदा विजय हमने पाई।
जन-जन में वेदों का पावन मंत्र गुंजाने आये है ।
जीवन हो उद्‌वुद्ध हमेंशा ब्रह्मयज्ञ सिखलाता।
द्वेश मिटाता देव यज्ञ केवल परमार्थ से नाता।
करें सदा सम्मान बड़ों का पितृ यज्ञ बतलाता।
फिर भी क्यों खोये-खोये ये बात नहीं पच पाता
दयानन्द के इस बगिया को पुनः सजाने आये है।।
सर्व सुखों की करें कामना यह वैदिक संस्कृति
स्वार्थ में आकंठ डूब गये यह मानव विकृति।
दुर्व्यसनों से सराबोर क्यो? आज हमारी संतति
इद्रन्नंसम् को छोड़ दिया सब कैसे हो उन्नति।
संस्कार विधि, व्यवहार भानु का पाठ पढ़ाने आये है ।।

पं० संजय सत्यार्थी,
क्रांतिकारी कवि एवं ओजस्वी वक्ता।

लिए संघर्ष करने वाले लोग आज जाति के नाम पर बटे हुए है। आज आवश्यकता है महर्षि प्रणीत शास्त्र सम्मत विचारधारा को जानने और मानने की जिन्होंने जाति निर्माण नहीं, मानव निर्माण की सुन्दर रूप रेखा हमारे बीच प्रस्तुत किये। आज जन्मना जातिवाद के बंधन को तोड़कर कर्म प्रधान समाज का निर्माण करो और मानव-मानव एक हो जाओ इसी में सभी की भलाई है। आज मनुष्य को जातिवाद की संकीर्णता से उपर उठकर श्रेष्ठ मानव अर्थात आर्य बनना होगा। क्योंकि, आर्य बनने से किसी प्रकार की मलीनता, संकीर्णता मन में नहीं होता। वह देवत्व को प्राप्त कर लेता है। महर्षि दयानन्द ने आर्य के संदर्भ में बड़ी सुन्दर बात कही हैं-

आर्य- जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी सत्यविद्यादि गुण युक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं उनको आर्य कहते हैं। और जो इसके विपरीत हो उसे अनार्य कहते है। आर्य शब्द के उच्चारण मात्र से ही हमारे मन में दिव्यता का संचार होता है। परमात्मा ने उस सृष्टि के अन्दर मानव की रचना की लेकिन इसके विकाश के लिये वेद ज्ञान की धारा भी प्रवाहित कर दी। जो व्यक्ति परमात्मा के उस ज्ञान को ग्रहण कर उसी के अनुकूल व्यवहार करता है तो वह आर्य की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। वह श्रेष्ठों की श्रेणी में आ जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम को आर्य पुत्र से सम्बोधित किया गया है क्योंकि उन्होंने आर्य मर्यादा का अक्षरशः पालन किया था इसलिये पुरूषोत्तम कहलाये। महर्षि दयानन्द ने आर्य अर्थात् श्रेष्ठ ज्ञान के विस्तार के लिये ''कृण्वणतो विश्वमार्यम्'' का उद्घोष किया। आइये हम सब महर्षि के उस उद्घोष को साकार करने के लिये जन-जन में आर्यत्व का संचार करें। जिससे संसार सभी सीमाओं को तोड़कर एक सूत्र में बंध सके। आज समाज में फैले आसुरी और राक्षसी प्रवृति का विनाश करना होगा जो देवत्व और आर्यत्व के प्रसार से ही संभव है।

- संजय सत्यार्थी

आर्य संकल्प रजि. नं0-पी.टी.260

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

सेवा में,
मैसर्स........................
ग्रा०........................
पो०........................
जिला........................

मुद्रित सामग्री

(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

आर्यसमाजस्य दशनियमाः

1. सर्वाः सद्विद्याः तथा ये पदार्थविद्यया ज्ञायन्ते तेषां सर्वेषां मूलः परमेश्वरः अस्ति।
2. ईश्वरः सच्चिदानन्दस्वरूपः, निराकारः सर्वशक्तिमानः, न्यायकारी, दयालुः, अजन्मा, अनन्तः, निर्विकारः, अनादिः, अनुपमः, सर्वाधारः, सर्वेस्वरः, सर्वव्यापकः, सर्वान्तर्यामी, अजरः, अमरः, अभयः, नित्यः, पवित्रः तथा सृष्टिकर्त्ता अस्ति। अतः सः एव उपासनीयः।
3. वेदः सर्वासां सद्विद्यानां पुस्तकं विद्यते। वेदस्य अध्ययनम्, अध्यापनम्, श्रवणम् श्रावणम् च सर्वेषां आर्याणां परमो धर्मो विद्यते।
4. सत्यस्य ग्रहणार्थं तथा असत्यस्य परित्यागार्थं सर्वदा वयं उद्यतः भवेम।
5. सत्यम्, असत्यम् विचारपूर्वकं धर्मानुसारेण सर्वाणि कार्याणि कर्त्तव्यानि।
6. संसारस्य उपकारविधानम् अस्य समाजस्य मुख्यम् उद्देश्यम् वर्तते, अर्थात् शारीरिकं-आत्मिकं-सामाजिकं उन्नति विधानं च।
7. सर्वैः सह प्रीतिपूर्वकं धर्मानुसारं यथायोग्यं च प्रवर्तनीयम्।
8. अविद्यायाः नाशः विद्यायाः वृद्धिश्च करणीयः।
9. प्रत्येकः मनुष्यः न केवलं आत्मोन्नत्या सन्तुष्टो भवेत् अपितु सर्वेषाम् उन्नत्या आत्मोन्नतिर्जाता इति मन्येत्।
10. सर्वे मानवाः सामाजिक नियमानां सर्वहितकारीनियमानां च पालने पराधीनाः भवेयुः। प्रत्येकं हितोपकारके कार्ये स्वतन्त्रताः भवेयुः।

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।